IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

प्रेम नारायण 'पंकिल' के काव्य में ग्राम्य-संस्कृति

आमोद प्रकाश चतुर्वेदी, **शोधार्थी**, हिन्दी विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय आरा

प्रो. (डॉ.) दिवाकर पाण्डेय **(शोध-निर्देशक)**, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय आरा, बिहार

सारांश

पंकिल के जीवन का अधिकांश भाग गाँवों में ही बीता है पर अपने गाँव में नहीं बीता है। परिवेश का यह गँवई प्रभाव उनके व्यक्तित्व और उनकी रचनाओं पर भरपूर पड़ा है। मनुष्य की आरम्भिक बसावट गाँव के रूप में ही अस्तित्व में आयी थी। रिहायश की दृष्टि से भारत के दो भाग किये जाते हैं- शहरी भारत और ग्राम्य भारत। भारत की अधिसंख्य जनता इसी ग्राम्य भारत की निवासी है। गाँधी जी ने कहा है कि भारत गाँवों में बसता है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार 'पंकिल' के काव्य में प्रकृति-प्रेम, भक्ति भावना और ग्राम्य-संस्कृति के चित्रण आपस में इतने घुले-मिले हैं कि पता ही नहीं चल पाता कि पंकिल की रचना का मुख्य स्वर क्या है। प्रस्तुत आलेख में इनके काव्य में ग्राम्य-संस्कृति के चित्रण का एक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

बीज-शब्द

ग्राम, बाजारीकरण, ओनई-घटा, ग्राम-देवता, सौन्दर्य

पंकिल के जीवन का अधिकांश भाग गाँवों में ही बीता है पर अपने गाँव में नहीं बीता है। परिवेश का यह गँवई प्रभाव उनके व्यक्तित्व और उनकी रचनाओं पर भरपूर पड़ा है। मनुष्य की आरम्भिक बसावट गाँव के रूप में ही अस्तित्व में आयी थी। वैदिक साहित्य में 'ग्राम' शब्द जिस अर्थ में मिलता है, ठीक उसी अर्थ में हम आज भी उसका प्रयोग करते हैं। उस काल में ग्राम का मुखिया ग्रामणी कहलाता था। रिहायश की दृष्टि से भारत के दो भाग किये जाते हैं- शहरी भारत और ग्राम्य भारत। भारत की अधिसंख्य जनता इसी ग्राम्य भारत की निवासी है। गाँधी जी ने कहा है कि भारत गाँवों में बसता है। अब तो स्थिति यह है कि लोक-परम्परायें, पर्व-त्योहार, रीति-रिवाज, धार्मिक-मान्यतायें, आतिथ्य-सत्कार, भ्रातृ-बंधुत्व, कथा-कहानी जैसी चीजें बस गाँवों में ही बची हैं। विडम्बना यह कि जैसे-जैसे गाँवों में शहर अपनी घुसपैठ बढ़ाते जा रहे है, वहाँ भी बाजारीकरण की संस्कृति हावी होती जा रही है। पंकिल का प्रकृति-प्रेम, उनकी भक्ति भावना और उनका ग्राम्य बोध, ये तीनों आपस में इतने घुले-मिले हैं कि पता ही नहीं चल पाता कि पंकिल की रचना का मुख्य स्वर क्या है। अपने बचपन और गाँव की सुधि जीवन पर्यंत बनी रहती है। यीट्स अपनी कविता The Lake Isle of Innisfree में अपने बचपन के रहिवास की स्मृति से भावविभोर होकर पुन: वहीं जाने और घर बनाने की बात कहते हैं-

I will arise and go now, and go to Innisfree

And a small cabin build there, of clay and wattles made

Nine bean rows will I have there, a hive for honey-bee

And live alone in the bee-loud glade[1]

यीट्स नगर में रहते हैं, पर उनके बचपन की यादों में इनिस्फ्री रचा-बसा हुआ है। उनके मन में ये साध है कि मैं इनिस्फ्री जाऊँगा और वहाँ एक मिट्टी का घर बनाऊँगा। घर के चारों ओर टाटी बाँधूगा। कल्पना के आनंदातिरेक में कहते हैं कि नौ कतारें वे सेम की लगायेंगे। मधुमक्खी का एक छत्ता भी होगा वहाँ, फिर वे मधुमक्खियों से गुंजरित वन्य-समतल में एकांतवास करेंगे। पंकिल के मन में भी उनका गाँव रचा-बसा है। जहाँ कहीं भी थोड़ा अवकाश मिलता है, पंकिल अपने गाँव की मानसिक यात्रा पर निकल जाते हैं। उन्हें गाँव के तालाब और उसके पास के पुराने इमली के पेड़ की याद आ जाती है। आम के बागीचों में कोयल की कुहुक जैसे उन्हें आमंत्रित कर जाती है। वह गाँव ऐसा है कि स्वर्ग भी उसकी ओर ललचाई दृष्टि से देखता है। पंकिल का मन गाँव के लिये तड़प उठता है-

गउवै खातिर छछनै मोर परान
परसत धरनि सरस सोहराइल
सघन रसाल की छाँव रे
कोकिल कीर मधुर सुर कूँजत
कागा करै काँव-काँव रे
तँह विधुबदनी बइसि बतियावैं टेरि परसपर नाँव रे
सरगो के सखि ललचावै सलोना सबसे सुघर मोर गाँव रे ॥[2]

शहर का फैलाव बहुत होता है। उनकी तुलना में गाँव का आकार बहुत छोटा होता है। लेकिन गाँव में जो खुलापन होता है उसका शहरों में नितांत अभाव होता है। ग्राम्य तालाब की जगह स्वीमिंग पूल, बगीचों की जगह व्यवस्थित पार्क और वृक्षों की जगह गमले में पौधे लगाकर, अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद शहर गँवई उन्मुक्तता का एक अंश भर भी नहीं जुटा पाता है। पंकिल के मन में गाँव की यही छवि हिलोर मारती है, जहाँ भ्रमल-दल कमल को झूला झुलाते हैं, घनी बँसवारी में घुसकर पुरुआ बयार बाँसुरी बजाती है-

अलिदल नलिनीं झुलावैं री आली निरखु तलइया ।
घनि बँसवरिया में पुरुबी बयरिया
रसे रसे बँसुरी बजावै री आली, निरखु तलइया ।
सर बर तरुनी नयन दुइ मछरी
कमल कै हथवा हिलावैं री आली, निरखु तलइया ।
मोजरल अमवा पियरि सरसोइया
फुलल परसवा बोलावै री आली, निरखु तलइया ।
अलिदल नलिनीं झुलावैं री आली निरखु तलइया ।[3]

पंकिल सौंदर्य बोध के कवि हैं। वे गँवई दैन्य को नहीं पकड़ते हैं, वे सौंदर्य पकड़ते हैं। उनका गाँव अभाव या कुरूपता का ठिकाना नहीं बल्कि श्री और सौंदर्य का वाहक है-

मोरी सहेलिया रे,
गउवैं खातिर छछनै मोर परान मोरी सहेलिया रे ।
खरी जिउतिया भुखैं मतरिया,
ननदो करैं ओसार अगोरिया – मोरी सहेलिया रे
पंडित भोरे भरैं भैरवीतान, मोरी सहेलिया रे -
गउवैं खातिर छछनै मोर परान मोरी सहेलिया रे ।[4]

आज जब जातिगत वैषम्य पूरे भारत में अपना मुँह फाड़े खड़ा है, गाँव अभी भी सहृदयता के साथ सबको साथ लेकर चल रहा है। पंकिल के काव्य में यह गँवई समरसता सर्वत्र दिखाई पड़ती है। स्वाती और चित्रा के जल से लहराते धान के खेत, नाइन और धोबिन का पहुरा पाना, बरगद के नीचे चौपाल, कहीं-कहीं ढोलक की तान, कहीं बिरहा, कहीं पकते गुड़ की सोंधी खुशबू, गुड़ के कढ़ाह की मीठी और करारी खुरचन आदि कुछ भी पंकिल की दृष्टि से ओझल नहीं हो पाते है। पंकिल आशीष देने के स्वर में गाँव को जुग-जुग जीने की कामना करते हैं -

नाउन धोबिन धनि मलिहोरी,

पावैं पहुरा खोरिन खोरी – मोरी सहेलिया रे
स्वाती चितरा लहरैं गोइड़ै धान, मोरी सहेलिया रे -
गउवैं खातिर छछनै मोर परान मोरी सहेलिया रे ।

कतहूँ बरगद तर चौपाला,
कतहूँ बजै ढोल पर आल्हा - मोरी सहेलिया रे
कतहूँ बिरहा गावैं ग्वाला रेखभिनान, मोरी सहेलिया रे -
गउवैं खातिर छछनै मोर परान मोरी सहेलिया रे ।

जुग-जुग जीयै सखी मोर गउवाँ ।
कचरस सोन्ह करहवा कै खुरचन
लिटका लटीयै सखी मोर गउवाँ -
जुग-जुग जीयै सखी मोर गऊवाँ ।[5]

परिवार की अवधारणा बदल गयी है। आज छोटे बच्चों की सामाजिक विज्ञान की पुस्तक देंखे तो हम परिवार के दो प्रकारों का विवरण पाते हैं-न्यूक्लियस फैमिली और एक्स्टेंडेड फैमिली। पति, पत्नी और बच्चे न्यूक्लियस फैमिली तथा दादा, दादी, चाचा और चाची आदि एक्स्टेंडेड फैमिली के उदाहरण हैं। ग्राम में अभी भी कुछ हद तक संयुक्त परिवार का अस्तित्व बचा हुआ है। यदि रसोईं अलग-अलग हो भी गयी है तो ओसारे अभी भी साझे के हैं। ये ओसारे परिवारीजनों से ही नहीं बल्कि पास-पड़ोस के जनों से भी भरे रहते हैं। कभी इनमें अनाज के बोरे रखे जाते हैं तो कभी वृद्धायें लेटी हुई आपस में हाल-चाल करती हैं। कंथा या लेवन सीने के लिये भी ये ओसारे बड़े सुभीते के स्थान होते हैं। महिलाओं का आपसी वार्तालाप और लेवन की सिलाई साथ-साथ चलती रहती है। पंकिल टाँकते हैं-

बुढ़-ठेल तिरिया ओसरिया में ओठघल
लेवन सीयैं सखी मोर गउवाँ -
जुग-जुग जीयै सखी मोर गऊवाँ ।[6]

बाबा नागार्जुन को बाहर रहते हुए अपने गाँव की बेतरह याद आती है। वे अपने गाँव को याद करते हुये कहते हैं-

याद आता मुझे अपना वह तरउनी ग्राम/ याद आती लीचियाँ, वे आम
याद आते मुझे मिथिला के रुचिर भू-भाग/ याद आते धान
याद आते कमल कुमुदिनी और तालमखान[7]

अपनी जन्मभूमि का आकर्षण ही कुछ ऐसा होता है कि वाल्मीकि के राम कह उठते हैं- 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'। पंकिल को बार-बार अपने गाँव की सुधि हो आती है। उनका कण्ठ फूट पड़ता है- "गाँव तो इंद्र की राजधानी है जिसको देख के आँखें ललचा जाती हैं। घिरी घटाओं के नीचे दादुर, मोर और पपीहे बोल रहे हैं। छप्पर पर चढ़ी हुआ लता का लालित्य अद्‌भुत है।' आज की नगरीय फ्लैट संस्कृति में एक बहुत बड़ी आबादी को सूर्य के ही दर्शन नहीं होते तो भला 'ओनई घटा' कहाँ से दिखाई देगी। यह तो खुले आकाश के दुलारे और समस्त प्रकार की उन्मुक्तता के आश्रय-स्थल 'गाँवों' में ही सम्भव है। एक और परम्परा जो अब खण्डित-सी होती प्रतीत हो रही है, वह है ग्राम-देवता का अस्तित्व। डॉ. रामकुमार वर्मा की प्रसिद्ध कविता 'हे ग्राम देवता नमस्कार' में हमारे अन्नदाता कृषक को ग्राम देवता कहा गया है परंतु इसके पूर्व से ही 'ग्राम-देवता' एक विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। ये ग्राम-देवता हमारे गाँवों में सम्मय, बरम, दइतरा, काली माई और डीह-बाबा के रूप में आज भी पूजे जाते हैं। आज भी गाँवों से जुड़े शहरी परिवार शादी-विवाह, मुण्डन-जनेऊ, गौना-दोंगा आदि संस्कारों के लिये अपने गाँव आते हैं और सदियों से चली आ रही ग्राम देवता के पूजन की परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं।

'ओक्का-बोक्का-तीन-तलोक्का' और 'घुघुआ-मन्ना' जैसे पारम्परिक बाल-खेल-गीतों के बिना गाँव की संस्कृति का सांगोपांग चित्रण नहीं किया जा सकता। गाँव का कोई भी पुरनिया अपने घुटनों पर नाती-नातिनों या पोते-पोतियों को झुलाता और

'घुघुआ-मन्ना' गाता हुआ मिल जायेगा। शहरों की भाग-दौड़ में इन सबके लिये भला अवकाश कहाँ? सहकारिता की महत्ता जीवन में एकाएक समझ में नहीं आती। लोकतंत्र के लिये तो सहकारिता की भावना प्राण के समान है। परिवार में या गाँव में जब अनेक बच्चे मिलकर ओक्का-बोक्का-तीन-तलोक्का गाते-खेलते हैं तो स्वत: उनके भीतर सहकारिता की भावना का विकास होता है-

गउवाँ इन्नर की रजधानी अखियाँ लखि ललचानी ना।
दादुर मोर पपीहरा बोलै ओनवल घटा सुहानी ना
मड़इन लतर ललित अरुझानी, अखियाँ लखि ललचानी ना।
सम्मय, बरम्ह, दइतरा, काली, भैरव की डिहवानी ना
माई सुघर मनौती मानी अखियाँ लखि ललचानी ना।
ओक्का-बोक्का तीन तलौका, 'पंकिल' गढ़ैं कहानी ना
सोहर गावैं धिया चुल्हानी, अँखिया लखि ललचानी ना।[8]

गाँव में एक और परम्परा है जिसे गाँव की बड़ी-बूढ़ियाँ अब भी निभाती हैं। वह परम्परा है छोटे-छोटियों को बात-बात में आशीर्वाद देने की। भोजपुरी अंचल में सत्तर साल की जेठानी के लिये पैंसठ साल की देवरानी आज भी 'दुलहिन' है। एक लोटा पानी देने पर अभी-भी जुग-जुग जिओ का आशीर्वाद मिलता है। वस्तुत: अभिवादन और आशीर्वाद दोनों ही कृतज्ञता के भाव हैं। गुलाब की सुंदर बागवानी के कारण यहाँ बागवाँ की बेटी को अचल सुहाग का आशीर्वाद दिया जा रहा है-

जुड़ै रहैं मलिया क धियनी पुतनिया कै जुग-जुग अचल सोहाग
दस दिशि गम-गम गमकै गुलबवा से धरती कै सखि अहोभाग॥[9]

गाँव का विस्तृत सिवान, उसके खेत-खलिहान-बधार, उसके चैता, कजरी, फाग सभी पंकिल के प्राण में बसते हैं। वे गाँव की एक-एक स्मृति को कुरेद-कुरेद कर सामने रख देते हैं। और इसमें उनकी सहायता करती है-'पगली'। हाँ! उसे सारा गाँव पगली ही कहता है। कौन जाने! ग्राम्य की मधुर छवि का चितेरा पंकिल-मन ही, जो मुँह-अँधेरे से रात्रि-पर्यंत अपने गाँव में भ्रमण करता है, पंकिल की पगली हो। वह पगली सारे गाँव की सगी है, सारा गाँव उसका सगा है। गँवई समाज में सभी वृद्ध और वृद्धायें दादा-दादी होते हैं। एक का नाती सबका नाती होता है। बेटी जो किसी एक की बेटी होती है, विवाह के बाद जब मायके आती है तो वह सारे गाँव की बेटी हो जाती है-

भोरवैं नंगे पग बधार घूमि आवै पगली
चैता कजरी फाग मल्हार झुमि गावै पगली
कुँहसै कहँवा गइल जमाना मनई मन कै साँचा/बुढ़वा सबकर दादी दादा, बेटवा बाची-बाचा
लरिका-लरकिनि के दुलार से बोलावै पगली/ भोरवैं नंगे पग बधार घूमि आवै पगली
समसै जात बिरादर सँगवै खेलैं होला पाती/ बेला बुधिया के संग खेलैं रमपत्ती सोबराती
छोरन के चुटकी बजाय के नचावै पगली/ भोरवै नंगे पग बधार घूमि आवै पगली
दुखरन देवन मन्नन मुन्नी सबकर नाना-नानी/ चिउरा फाँकै लावा भरसँइया भुजावै पगली-
भोरवैं नंगे पग बधार घूमि आवै पगली
चमरउटी की ताल तलइयन कोइन काढ़ैं भोला/क्षमा बिहारी शम्भू बिजई छानैं भाँग क गोला
चिथरू खुरपाती कै लोला धै मलियावै पगली
भोरवैं नंगे पग बधार घूमि आवै पगली[10]

इस प्रकार हम देखते हैं कि पंकिल के काव्य में ग्राम्य-संस्कृति का चित्र अपने अन्यतम रूप में यत्र-तत्र प्रकट हुआ है।

संदर्भ-

1. W.B. Yeats: The Lake Isle of Innisfree. (https://www.poetryfoundation.org/poems/43281/the-lake-isle-of-innisfree)
2. पंकिल: चोंचिया पसरले चिंहुँक बोले पपिहा पृ. सं. 23 पोथी डॉट कॉम (2019)
3. पंकिल: चोंचिया पसरले चिंहुँक बोले पपिहा पृ. सं. 24 पोथी डॉट कॉम (2019)
4. पंकिल: चोंचिया पसरले चिंहुँक बोले पपिहा पृ. सं. 24 पोथी डॉट कॉम (2019
5. पंकिल: चोंचिया पसरले चिंहुँक बोले पपिहा पृ. सं. 24 पोथी डॉट कॉम (2019)
6. वही,
7. नागार्जुन: सिंदूर तिलकित भाल (https://www.hindwi.org/kavita/sindur-tilkit-bhaal-nagarjun-kavita-18 से साभार)
8. पंकिल, प्रेमनारायण: चोंचिया पसरले चिंहुँक बोले पपिहा, पृ. 27 पोथी डॉट कॉम (2019)
9. पंकिल, प्रेमनारायण: चोंचिया पसरले चिंहुँक बोले पपिहा, पृ. 20 पोथी डॉट कॉम (2019)
10. पंकिल, प्रेमनारायण: चोंचिया पसरले चिंहुँक बोले पपिहा, पृ. 59 पोथी डॉट कॉम (2019)